International Journal of Academic Research
P-ISSN: 2348-7666: Impact Factor: 7.215
Homepage: https://www.ijar.org.in/
Volume-13, Issue-2, April-June-2026
This work is licensed under a Creative Commons Attribution 4.0 International License [CC BY 4.0]

Research Article

निर्मल वर्मा के कथा-साहित्य में सभ्यतागत विमर्श; आधुनिकता और भारतीयता का अंतर्द्वंद्व

एस. रजनी

सहायक प्रवक्ता- हिंदी विभाग (Aided), मद्रास क्रिश्चियन कॉलेज, तांबरम, चेन्नई

Corresponding Author: एस. रजनी

शोध सारांश

प्रस्तुत शोध-पत्र आधुनिक हिंदी साहित्य के मूर्धन्य लेखक निर्मल वर्मा के साहित्य और निबंधों में अंतर्निहित 'भारतीयता' और 'परंपरा' के तत्त्वों का विश्लेषण करता है। अक्सर आलोचक उनकी शैली और कथा-वातावरण पर 'यूरोपीय प्रभाव' या 'अजनबीपन' का आरोप लगाते रहे हैं। परंतु, यह शोध उनके परवर्ती साहित्य, विशेषकर उपन्यास 'अंतिम अरण्य' और निबंध संग्रह 'भारत और यूरोप : प्रतिश्रुति के क्षेत्र' के आलोक में यह सिद्ध करता है कि निर्मल वर्मा का लेखन पश्चिमी आधुनिकता के अंधानुकरण के बजाय भारतीय अस्मिता, लोक-स्मृति और सनातन परंपरा के प्रति एक गहन बौद्धिक एवं आत्मिक सरोकार है। शोध इस केंद्रीय प्रश्न की पड़ताल करता है कि पश्चिमी आधुनिकता के दीर्घकालिक संपर्क में रहने के पश्चात भी वे भारतीयता को किस रूप में परिभाषित करते हैं। निर्मल वर्मा के यहाँ अतीत के प्रति जो गहरा खिंचाव है, वह कोई पश्चगामी रूढ़िवादिता अथवा अतीत-मोह मात्र नहीं है, अपितु वह आधुनिक मनुष्य की 'सांस्कृतिक विस्मृति' के विरुद्ध अपनी खोई हुई जड़ों की एक सचेत और दार्शनिक तलाश है। अतः, उनका साहित्य पश्चिम के 'रेखीय समय' के विपरीत, भारतीय चेतना के 'चक्रीय समय' और आपसी सह-अस्तित्व के बोध को रेखांकित करता है।

बीज शब्द: निर्मल वर्मा, भारतीयता, सनातन परंपरा, सांस्कृतिक अस्मिता, अंतिम अरण्य, भारत और यूरोप, लोक-स्मृति, आधुनिकता, जड़ों की तलाश, समय-बोध.

प्रस्तावना:

यूरोपीय प्रभाव बनाम भारतीय सरोकार

हिंदी साहित्य में निर्मल वर्मा का आगमन नई कहानी आंदोलन के दौर में एक सर्वथा भिन्न एवं विलक्षण उद्घोष के रूप में हुआ था। उनकी प्रारंभिक कहानियों (परिंदे) और उपन्यासों (वे दिन) के आधार पर तत्कालीन आलोचना दृष्टि ने उन्हें 'यूरोपीय चेतना का लेखक' या 'अजनबीपन और अकेलेपन का रचनाकार' कहकर एक सीमित दायरे में बाँधने का प्रयास किया। पश्चिम में लंबे समय तक रहने के कारण उनकी शैली पर यूरोपीय शिल्प, आधुनिकतावादी संत्रास तथा अस्तित्ववादी दर्शन का प्रभाव देखना नि:संदेह स्वाभाविक था। आलोचकों का एक बड़ा वर्ग उन्हें केवल एक ऐसे प्रवासी लेखक के रूप में देखता रहा, जो भारतीय यथार्थ से दूर यूरोपीय वातावरण की धुंध में खोया हुआ था।

परंतु, जैसे-जैसे निर्मल वर्मा का लेखन अपनी परिपक्वता को प्राप्त हुआ, वैसे-वैसे उनका ध्यान बाह्य यथार्थ से हटकर मनुष्य की आंतरिक, आध्यात्मिक और सांस्कृतिक गहराइयों की ओर मुड़ता गया। उनके परवर्ती निबंधों और उपन्यासों में यह स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि वे पश्चिम की बौद्धिक विसंगतियों, उपभोक्तावाद और रेखीय इतिहास-बोध से टकराते हुए अंततः भारतीय चेतना, लोक-स्मृति तथा सनातन मूल्यों की ओर लौटते हैं। जैसा कि वे स्वयं अपने

निबंध में लिखते हैं-**"यूरोप के लिए जो चीज़ 'इतिहास' थी, वह भारत के लिए 'परंपरा' थी; एक ऐसी परंपरा जो अतीत की चीज़ नहीं है, जो वर्तमान में हमारे साथ जीती है।"**[1] उनका यह झुकाव केवल अतीत के प्रति एक भावुक संवेग नहीं था, वरन् पश्चिमी आधुनिकता के संकटों के बीच भारतीय अस्मिता की एक गहरी और गंभीर दार्शनिक खोज थी। इस प्रकार वे यूरोपीय शिल्प का उपयोग करते हुए भी अपनी अंतरात्मा में पूरी तरह भारतीय सरोकारों से जुड़े रहे।

पश्चिमी आधुनिकता के समक्ष भारतीय अस्मिता की परिभाषा

निर्मल वर्मा अपने महत्त्वपूर्ण निबंध संग्रह 'भारत और यूरोप : प्रतिश्रुति के क्षेत्र' में भारत और पश्चिम के सभ्यतागत टकराव की गंभीर मीमांसा करते हैं। वे पश्चिमी आधुनिकता के उस प्रारूप को पूरी तरह खारिज करते हैं, जो मनुष्य को उसकी प्रकृति, इतिहास और समुदाय से विमुख करता है। उनका सुविचारित मानना है कि यूरोपीय आधुनिकता ने मानव चेतना को एक ऐसे यांत्रिक औपनिवेशिक-बोध से ग्रस्त कर दिया है, जिसके प्रभावस्वरूप वह अपनी समृद्ध परंपरा को हीन दृष्टि से देखने लगता है।

निर्मल वर्मा के अनुसार, यह पश्चिमी प्रभाव भारतीय मानस को उसकी सांस्कृतिक जड़ों से काटकर आत्म-विस्मृति की ओर धकेलता है। उनके लेखन में यह स्पष्ट है कि पश्चिम का अंधानुकरण भारतीय समाज की मौलिकता को नष्ट कर रहा है। इसलिए, वे एक ऐसे वैकल्पिक विमर्श की वकालत करते हैं जो समकालीन मनुष्य को उसकी वास्तविक अस्मिता, लोक-स्मृति और सनातन जीवन-मूल्यों से दोबारा जोड़ सके। उनका यह दृष्टिकोण हिंदी आलोचना को पश्चिम के वैचारिक प्रभुत्व से मुक्त कराने का एक महती प्रयास है।

पश्चिमी आधुनिकता जहाँ 'बुद्धिवाद' (Rationalism), व्यक्तिवाद और 'रेखीय प्रगति' (Linear Progress) के सिद्धांत पर टिकी है, वहीं निर्मल वर्मा के अनुसार भारतीय अस्मिता अंतःकरण की शुद्धता, सह-अस्तित्व और 'चक्रीय समय-बोध' (Cyclical Time) पर आधारित है। वे लिखते हैं कि भारत को अपनी पहचान प्रमाणित करने के लिए पश्चिम के पैमानों या उनकी परिभाषाओं की कोई आवश्यकता नहीं है। उनके लिए भारतीयता कोई भौगोलिक सीमा या संकीर्ण राजनीतिक राष्ट्रवाद नहीं है, बल्कि वह जीवन जीने की एक सनातन पद्धति है जहाँ 'मैं' और 'अन्य' (परिवेश, प्रकृति और समाज) के बीच कोई तीखा विभाजन नहीं होता।

जैसा कि वे इस सभ्यतागत भिन्नता को रेखांकित करते हुए लिखते हैं-**"पश्चिम के विपरीत, जहाँ मनुष्य प्रकृति और इतिहास को अपने अधीन करने की चेष्टा करता है, भारतीय चेतना उसे चराचर जगत के साथ एक रागात्मक और सह-अस्तित्व के संबंध में देखने का आग्रह करती है।"**[2] पश्चिम की चिंता जहाँ इतिहास निर्माण को लेकर है, वहीं भारत की चिंता अपनी स्मृति और सांस्कृतिक सातत्य को बचाए रखने की है। यही प्रमुख कारण है कि आधुनिकता के समस्त थपेड़ों और संत्रास के बीच रहते हुए भी निर्मल वर्मा की लेखनी अंततः भारतीय चेतना की ओर लौटती है और उसी में समकालीन संकटों का समाधान ढूँढ़ती है।

लोक-संस्कृति और स्मृति का सभ्यतागत सातत्य

निर्मल वर्मा के चिंतन में भारतीयता की खोज केवल दर्शन या प्राचीन ग्रंथों तक सीमित नहीं है, बल्कि वह भारत की लोक-संस्कृति, उत्सवधर्मिता और जनमानस की उस सामूहिक चेतना में प्रकट होती है, जो सदियों से अक्षुण्ण रही है। वे मानते हैं कि पश्चिमी देशों ने आधुनिकता के नाम पर अपने लोक-जीवन और सामूहिक स्मृतियों को नष्ट कर दिया, जिससे वहाँ का मनुष्य नितांत एकाकी हो गया। इसके विपरीत, भारत की शक्ति उसकी इस विलक्षण क्षमता में है कि वह अपनी लोक-परंपराओं को बिना किसी लिखित या दस्तावेज़ी इतिहास के भी अपनी स्मृतियों में जीवित रखता है। उनके साहित्य में लोक और स्मृति केवल अतीत के अवशेष नहीं हैं, अपितु वे वर्तमान की यांत्रिकता और सांस्कृतिक संकट से लड़ने के सबसे बड़े बौद्धिक शस्त्र हैं।

जैसा कि वे इस बात को अपने चिंतन में और अधिक स्पष्ट करते हुए लिखते हैं, **"भारतीय लोक-मानस में स्मृति केवल एक व्यक्तिगत संपत्ति नहीं है, वह एक सामूहिक विरासत है, जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी उत्सवों, मिथकों और**

लोक-कथाओं के माध्यम से यात्रा करती है।"[3] निर्मल वर्मा का यह विश्वास पूरी तरह से सिद्ध करता है कि भारतीय चेतना को समझने के लिए यूरोपीय पैमानों की बौद्धिकता सर्वथा अपर्याप्त है, क्योंकि भारत की वास्तविक आत्मा यहाँ की लोक-श्रुतियों और सनातन लोक-स्मृति में विहरित होती है।

'अंतिम अरण्य': परंपरा, लोक और सनातन स्मृति का आख्यान

निर्मल वर्मा का अंतिम उपन्यास 'अंतिम अरण्य' उनकी इस 'भारतीयता की खोज' का चरम उत्कर्ष है। यह उपन्यास जीवन के अंतिम पड़ाव, मृत्यु, विदाई और प्रकृति के साथ मनुष्य के संबंध की ऐसी महागाथा है, जो सीधे उपनिषदों के 'वानप्रस्थ' और 'अरण्य संस्कृति' की याद दिलाती है। इस कृति में वे आधुनिक सभ्यता के कोलाहल से दूर मनुष्य को एक ऐसे एकांत में ले जाते हैं, जहाँ वह अपनी नश्वरता और शाश्वतता का साक्षात्कार करता है। उपन्यास का केंद्रीय प्रतीक 'अरण्य' (जंगल) स्वयं में भारतीय सनातन परंपरा का वाहक है, जहाँ मनुष्य अपने लौकिक अहंकार को विसर्जित कर समष्टि में विलीन होना सीखता है। यह अरण्य भौतिक भूगोल मात्र नहीं, बल्कि चेतना की एक आध्यात्मिक अवस्था है।

उपन्यास के पात्र (जैसे मेहरा साहब और कथावाचक) स्मृतियों के गहन गलियारों से गुज़रते हैं। यहाँ 'स्मृति' केवल व्यक्तिगत जीवन की बीती हुई यादों का संचय नहीं है, बल्कि वह एक 'लोक-स्मृति' और 'सांस्कृतिक स्मृति' है, जो आधुनिक महानगरीय-बोध में खो चुकी है। इसी प्रकार, उपन्यास में व्यक्त 'मृत्यु-बोध' भी पश्चिमी अस्तित्ववाद के भयावह अवसाद से भिन्न है। पश्चिम, जहाँ मृत्यु को एक निरर्थक और डरावना अंत मानता है, वहीं 'अंतिम अरण्य' में मृत्यु को एक सहज, पवित्र, गरिमामय और सनातन रूपांतरण के रूप में देखा गया है। जैसा कि उपन्यास का मुख्य चरित्र जीवन और मृत्यु के संधिकाल पर अरण्य के सन्नाटे को महसूस करते हुए अनुभव करता है, **"यह एक तरह की विदाई थी, जो अरण्य के पेड़ों के बीच से छनकर आती थी... जहाँ हर चीज़ अपने अंतिम छोर पर पहुँचकर शांत हो जाती है।"**[4] यह बोध पूर्णतः भारतीय दार्शनिक चिंतन और प्रकृति के नियमों के अनुकूल है। निर्मल वर्मा ने लोक-कथाओं, मिथकों और अरण्य के सन्नाटे के माध्यम से आधुनिक मनुष्य को उसकी जड़ों से जोड़ने का एक विरल आख्यान रचा है।

अतीत की ओर खिंचाव: रूढ़िवादिता या जड़ों की तलाश?

निर्मल वर्मा के चिंतन और सर्जनात्मक संसार पर यह आक्षेप नियमित रूप से समय-समय पर लगता रहा है कि वे अतीत का आवश्यकता से अधिक महिमामंडन करते हैं और एक काल्पनिक इतिहास में जीते हैं। परंतु उनके संपूर्ण साहित्य का यदि सूक्ष्म और निष्पक्ष विश्लेषण किया जाए, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि उनके यहाँ अतीत के प्रति जो गहरा खिंचाव है, वह किसी भी रूप में संकीर्ण रूढ़िवादिता या पुनरुत्थानवाद नहीं है। रूढ़िवादिता जहाँ अतीत को उसके समस्त दोषों और बाह्य आडंबरों के साथ ज्यों का त्यों, वर्तमान पर थोपने का आग्रह करती है और किसी भी प्रकार के प्रगतिशील परिवर्तन का विरोध करती है, वहीं निर्मल वर्मा की दृष्टि इसके सर्वथा विपरीत है। उनका अतीत-राग कोई अंधविश्वास या पश्चगामी सोच नहीं है, बल्कि वह आधुनिक मनुष्य की 'सांस्कृतिक विस्मृति' के विरुद्ध एक गहरी दार्शनिक और आत्मिक व्याकुलता है। जैसा कि वे इस संकट को रेखांकित करते हुए लिखते हैं-**"अतीत की ओर लौटना कोई रूढ़िवादिता नहीं है, बल्कि उस खोई हुई स्मृति को पुनर्प्राप्त करना है, जिसके बिना कोई भी समाज अपनी अस्मिता को नहीं बचा सकता।"**[5]

वे भली-भाँति जानते थे कि पश्चिमी आधुनिकता और औद्योगिकीकरण की अंधी दौड़ ने मानव चेतना के भीतर जिस 'शून्यता' और अकेलेपन को जन्म दिया है, उसका उपचार केवल बाहरी भौतिक प्रगति में कदापि संभव नहीं है। यही कारण है कि वे अतीत की ओर इसलिए नहीं लौटते कि वे आधुनिक ज्ञान-विज्ञान से विमुख होना चाहते हैं, बल्कि वे वहाँ से जीवन-मूल्य और एक ऐसी जीवंत ऊर्जा लेकर वर्तमान के संकटों का समाधान खोजना चाहते हैं, जो मनुष्य को उसकी खोई हुई पहचान वापस दिला सके। उनके लिए अपनी जड़ों की तलाश का अर्थ है- उस निरंतर बहती हुई सनातन और लोक परंपरा से दोबारा जुड़ना, जो मनुष्य को प्रकृति और समष्टि के साथ सह-अस्तित्व में रहना सिखाती है।

निर्मल वर्मा के यहाँ अतीत की यह खोज ऐतिहासिक तथ्यों की सूखी पुनरावृत्ति नहीं, बल्कि एक कलात्मक और दार्शनिक आवश्यकता है। वे परंपरा को कोई जड़ वस्तु नहीं मानते, जिसे संग्रहालयों में सुरक्षित रखा जाए; बल्कि वे उसे एक

गतिशील तत्त्व के रूप में देखते हैं। जैसा कि वे स्पष्ट करते हैं, **"परंपरा कोई ऐसी जड़ वस्तु नहीं है जिसे हम संग्रहालयों में सुरक्षित रख सकें। वह हमारे भीतर बहने वाली एक निरंतर चेतना है, जो अतीत को वर्तमान के साथ जोड़ती है।"**[6] इस प्रकार, निर्मल वर्मा का अतीत-अनुराग रूढ़िवादिता की संकीर्ण गलियों में भटकने के बजाय समकालीन मनुष्य को उसकी अपनी सांस्कृतिक भूमि पर सुदृढ़ता से स्थापित करने का एक सार्थक बौद्धिक प्रयास है।

निष्कर्ष

निर्मल वर्मा का परवर्ती साहित्य इस बात का जीवंत प्रमाण है कि एक रचनाकार वैश्विक धरातल पर जीने और पश्चिमी आधुनिकता के गहन प्रांगण में रहने के बावजूद अपनी सांस्कृतिक जड़ों के प्रति कितना निष्ठावान रह सकता है। उन पर यूरोपीय प्रभाव का जो आरोप बार-बार लगाया जाता है, वह केवल उनकी भाषा के बाहरी शिल्प और विन्यास तक सीमित है; उनकी अंतरात्मा और वैचारिक चिंतन की अंतर्धारा पूर्णतः भारतीय है।

'भारत और यूरोप: प्रतिश्रुति के क्षेत्र' तथा 'अंतिम अरण्य' जैसी युगांतरकारी कृतियों के माध्यम से वे यह स्थापित करते हैं कि भारतीयता कोई बंद या जड़ व्यवस्था नहीं है, बल्कि एक निरंतर प्रवहमान सांस्कृतिक नदी है जिसमें लोक-जीवन, प्रकृति और सनातन जीवन-मूल्य समाहित हैं। उनका अतीत के प्रति अनुराग किसी संकीर्ण रूढ़िवादिता या पुनरुत्थानवाद का मार्ग नहीं चुनता, बल्कि वह आधुनिक महानगरीय मनुष्य के अकेलेपन, आत्मिक शून्यता और संत्रास को मिटाने वाली एक गहरी 'दार्शनिक जड़ों की तलाश' है।

निर्मल वर्मा का यह युगीन अवदान हिंदी साहित्य और आलोचना को पश्चिम के बौद्धिक उपनिवेशवाद से मुक्त कराता है। वे औपनिवेशिक मानसिकता के पैमानों को खारिज कर भारतीय मनीषा को अपनी मौलिक अस्मिता, परंपरा की गतिशीलता और लोक-स्मृति को एक नए दृष्टिकोण से पहचानने की ऊर्जावान दृष्टि प्रदान करते हैं। उनका संपूर्ण चिंतन अंततः समकालीन संकटों के बीच भारतीय चेतना की प्रासंगिकता को पुनर्स्थापित करता है।

संदर्भ सूची

1. वर्मा, निर्मल, भारत और यूरोप: प्रतिश्रुति के क्षेत्र. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-1995, पृष्ठ सं- 38
2. वर्मा, निर्मल, भारत और यूरोप: प्रतिश्रुति के क्षेत्र. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-1995, पृष्ठ सं- 45
3. वर्मा, निर्मल, भारत और यूरोप: प्रतिश्रुति के क्षेत्र. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-1995, पृष्ठ सं- 62
4. वर्मा, निर्मल, अंतिम अरण्य, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2000, पृष्ठ सं- 146
5. वर्मा, निर्मल, भारत और यूरोप: प्रतिश्रुति के क्षेत्र. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-1995, पृष्ठ सं- 74
6. वर्मा, निर्मल, शब्द और स्मृति, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-1976, पृष्ठ सं- 88

Citation: एस. रजनी 2026. "निर्मल वर्मा के कथा-साहित्य में सभ्यतागत विमर्श; आधुनिकता और भारतीयता का अंतर्द्वंद्व". International Journal of Academic Research, 13(2): 130-133.

Copyright: ©2026 एस. रजनी. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution License (https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/), which permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original author and source are credited.